लक्ष युवगल गीतार्चना

(एक लाख युवती-युवकों द्वारा सामूहिक गीता पाठ)

विश्व हिंदू परिषद्

और

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षणिक
संस्थानों द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम

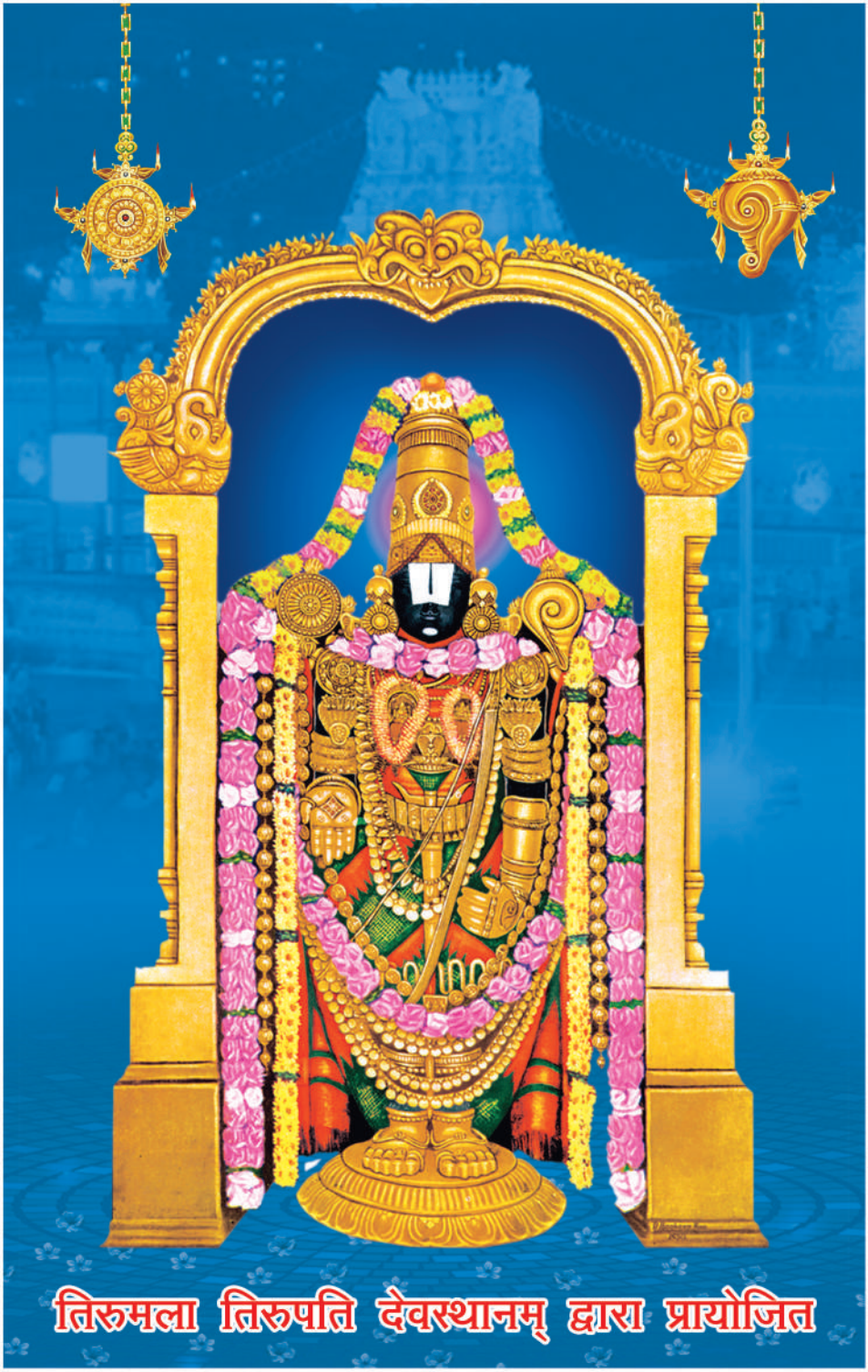
तिरुमला तिरुपति देवस्थानम् द्वारा प्रायोजित

भारत के युवक और युवतियों को सौहार्दपूर्ण आमंत्रण

महामहिम श्री रामनाथ कोविंद का संदेश

श्लोक : यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। **4:7** ।।

श्लोक : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।। **4:8** ।।

भारत के राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी ने युवाओं को भगवान श्री कृष्ण के इस उपरोक्त गीता संदेश से प्रेरणा लेने का आह्वान किया, जो उन्हें आश्वासन देता है।

''जब भी धर्म की हानि होगी, तब वह - भगवान स्वयं प्रकट होंगे, ताकि उनकी अभिव्यक्ति द्वारा आदेश को फिर से स्थापित किया जा सके।''

''युवा अधर्म को कुचलने और धार्मिकता को बनाए रखने'' की दिव्य योजना के प्रसार में मदद करने के लिए अपनी कमर कस लें।

राष्ट्रपतिजी ने आगामी १४ दिसम्बर को गीताजयंती के अवसर पर **'लक्ष युवगल गीतार्चन'** ईश्वरीय योजना के क्रियान्वयन में युवाओं को कमर कसने का संदेश दिया।

श्रीमते नारायणाय नमः

जय श्रीमन्नारायण

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्री श्री श्री त्रिदंडि चिन्नजीयर स्वामीजी के मंगलाशासन (शुभकामनाएँ)

किसी देश को तबाह करने के लिए उसकी मूल भाषा को धीरे – धीरे मिटा देना ही काफी है।

विदेशी शासकों ने उसी रणनीति का पालन किया और हमारी भाषा की जड़ों को नुकसान पहुँचाया। कुछ हद तक हमारे शासकों की अज्ञानता भी इसका कारण थी।

ऐसी ही स्थिति एक समय अर्जुन पर भी पड़ी थी। उन्होंने १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का गुप्त काल पूरा किया। उसके बाद धर्म की रक्षा करके अपने देश को बचाना उनकी जिम्मेदारी थी।

कौरवों की ओर से सैनिकों की 11 अक्षौहिणी सेना थी, जबकि पांडवों की ओर केवल 7 अक्षौहिणी सेना थी।

जब युद्ध शुरु होनेवाला था तो अर्जुन ने गलत सोच रखी थी। उसने सोचा कि अपने चचेरे भाइयों और गुरुओं के साथ लड़ाई लड़ना गलत था। इस प्रकार उन्होंने धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म माना। उसने भीख माँगना लड़ाई से बेहतर समझा। यह 'गलत लगाव' के कारण था।

रामानुज परंपरा के यामुनमुनि नामक एक महान आचार्य द्वारा इस स्थिति को 'अस्थान स्नेह कारुण्यम्' के रूप में वर्णित किया गया है। ऐसा ही भ्रम देश

में खासकर युवाओं में है। दुर्भाग्य से वे समय को गलत कामों में व्यतीत कर रहे हैं और असहज जीवन के अभ्यस्त हो रहे हैं। वे राष्ट्र के प्रति अपने नैतिक दायित्वों की उपेक्षा कर रहे हैं।

आशीर्वाद के रूप में विश्व हिंदू परिषद् ने 14 दिसंबर को आगामी ''गीता जयंती'' के अवसर पर भाग्यनगर (हैदराबाद) में एक भव्य आध्यात्मिक कार्यक्रम का आयोजन करने का प्रस्ताव रखा है, जिसका नाम है 'लक्ष युवगल गीतार्चना'।

लगभग एक लाख युवाओं और महिलाओं द्वारा कोरस में चालीस चयनित गीता श्लोकों का पाठ व गायन किया जाएगा।

यह उन सभी के लिए एक सुनहरा अवसर है जो अपना भविष्य बेहतर करना चाहते हैं।

हम भी कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं।

नारायण - नारायण - नारायण

श्लोक : सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

तात्पर्य : गोपाल ग्वाला ने उपनिषदों को जो गायों के समान हैं उनका सार निकाला और बछड़े जैसे अर्जुन के माध्यम से दुनिया के अच्छे बुद्धिजीवियों के बीच अमृत जैसा 'गीता क्षीर' वितरण किया है।

भगवद्गीता भक्तिमाला

15 से 40 वर्ष के आयु वर्ग के भारतीय युवाओं में ज्ञान की आध्यात्मिक शक्ति को विकसित करने और क्रिया अभिविन्यास को बढ़ावा देने और उन्हें आत्मविश्वासी बुद्धिजीवियों के रूप में आकार देने के लिए, महापुरुषों ने एक लाख युवाओं द्वारा चुने हुए चालीस (40) गीता श्लोकों के सामूहिक गायन की व्यवस्था करने का निर्णय लिया है।

इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले युवाओं से हमारी विनती है कि वे पहले से ही गीता श्लोकों का अध्ययन करें, उन्हें समझें और प्रत्येक श्लोक के सार को समझें जिससे वे उन्हें आसानी से दिल से सीख सकें और श्लोकों का केंद्रीय विचार जीवन भर उनके साथ रहेगा और वे जिसी भी क्षेत्र में काम करेंगे, उसमें चमकने में वे विचार उनकी मदद करेंगे।

छाया चित्र, शब्दों का विभाजन, शब्द से शब्द तक अर्थ, पदार्थ सार, और विशिष्ट अर्थ युक्त 'पाँच प्रकार' अध्ययन प्रणाली युक्त पाठ्यपुस्तकों की प्रतियाँ तैयार किया गया है। ये पाठ्य पुस्तकें विश्व हिन्दू परिषद् (वी एच पी) द्वारा लक्ष युवगल गीतार्चना में भाग लेनेवाले उम्मीदवारों को वितरित की जाएँगी। संयोग से यदि कुछ उम्मीदवार उन्हें समय पर प्राप्त नहीं करते हैं, तो वे अंतर्जाल में **www.gitarchana.com** से भी पाठ डाउनलोड कर सकते हैं।

Appeal

We request your contribution-donation to organize 'Laksha yuvagala gitarchana' programe. We appeal to you to send your munificent donations to the following bank account or phone pay / google pay number.

Bank name : **बैंक आफ़ॅ बड़ौदा**
ब्रान्च : आबीड्स, हैदराबाद
A/c नंबर : **05110100018754**
IFSC Code : BARB0HYDERA
Note : '0' means zero here
Google pay/Phone pay : **6309982878**
वलिसेट्टी लक्ष्मी शेखर - कोशाधिकारि
Phone : 9866035557

SCAN AND PAY

युवाओं के पारायण के लिए श्लोक

अथ ध्यानम् .... ओम्

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशांतये ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अथ... श्रीमद्भगवद्गीता... ओम्

श्री भगवान् उवाच...

1. क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ **2:3** ॥

2. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ **2:27** ॥

3. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ **2:47** ॥

4. दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ **2:56** ॥

5. ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ **2:62** ॥

6. क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ **2:63** ॥

7. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ **3:21** ॥

8. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ **3:35** ॥

9. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ **4:7** ॥

10. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ **4:8** ॥

11. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ **4:24** ॥

12. ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ **5:16** ॥

13. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ **6:5** ॥

14. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ **6:17** ॥

15. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ **6:35** ॥

16. पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ **6:40** ॥

17. मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ **7:3** ॥

18. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ **7:19** ॥

19. अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ **8:5** ॥

20. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ **8:16** ॥

21. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ **9:22** ॥

22. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ **9:26** ॥

23. अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ **10:20** ॥

24. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ **10:41** ॥

25. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ **11:54** ॥

26. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ **11:55** ॥

27. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ **12:13** ॥

28. सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ **12:14** ॥

29. सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ **13:13** ॥

30. समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ **13:28** ॥

31. मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ **14:25** ॥

32. शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ **15:8** ॥

33. अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ **15:14** ॥

34. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ **16:21** ॥

35. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ **16:24** ॥

36. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ **17:15** ॥

37. यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ **18:5** ॥

38. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ **18:46** ॥

39. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ **18:66** ॥

संजय उवाच

40. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ **18:78** ॥

ओम् असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय

ओम् शांतिः शांतिः शांतिः
सर्वं श्रीकृष्णार्पणमस्तु
ओम् तत् सत्

for more Bhagavadgita images visit
www.bhagavadgitabhavachitrasudha.com

श्लोक : शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशांतये ।।

प्रतिपदार्थ : शुक्लां = श्वेत, अम्बरम् = वस्त्र, धरं = पहनने वाला, विष्णुं = सारे विश्व में फैला हुआ, शशिवर्णम् = चन्द्र जैसा तेजवाला, चतुर्भुजम् = चार हाथवाला, प्रसन्नवदनं = संतुष्ट मुखवाला, सर्वविघ्नोपशान्तये = सर्व विघ्नों को हटाने केलिए, ध्यायेत् = ध्यान करें ।

तात्पर्य : जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त हैं, जिनके पास चन्द्रमा के समान प्रकाश है, जिनके चार हाथ हैं और जिनका मुख सुखद है, वैसे ही सभी बाधाओं को दूर करने के लिए सकल विध्ननिवारक श्री गणेश भगवान का ध्यान करें ।

श्लोक : वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ।।

प्रतिपदार्थ : वसुदेवसुतं = वसुदेव का पुत्र, कंसचाणूरमर्दनम् = जिन्होंने कंस और चाणूर का संहार किया, देवकीपरमानन्दम् = जो माँ देवकी को आनंद देने वाले हैं, जगद्गुरुम् = सारे जग के गुरु, (ऐसे), देवम् = भगवान को, वंदे = नमस्कार कर रहा हूँ।

तात्पर्य : मैं भगवान श्री कृष्ण को नमन करता हूँ। जो वसुदेव के पुत्र हैं, जिन्होंने कंस और चाणूर का वध किया और देवकी को बहुत खुशी दी और विश्व के गुरु भी हैं।

श्लोक : नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

प्रतिपदार्थ : नारायणं = देवादिदेव श्रीमन्नारायण को, नरं चैव = नर रूप में अवतरित, नरोत्तमम् = नरोत्तम श्रीकृष्णपरमात्मा को, देवीं सरस्वतीम् = सरस्वती माता को, व्यासम् = व्यास भगवान को, नमस्कृत्य = नमस्कार करके, ततो = तत्पश्चात्, जयमुदीरयेत् = श्री महाभारत को पढ़ना / सुनना चाहिए।

तात्पर्य : भगवान नारायण, जो सभी मन के निवासी हैं, श्री कृष्ण जो पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं उनको, देवी सरस्वती को और ऋषि व्यास को नमस्कार करने के बाद ही महाभारत को पढ़ना या सुनना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता के जो 700 श्लोक हैं वे कर्तव्यपरायणता का आध्यात्मिक ज्ञान है ।
ये श्लोक भीष्मपर्व में मिलते हैं जो महाभारत के कुल 18 सर्गों में से ६वां है ।

भगवान उवाच :

1. श्लोक : क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 2:3 ॥

पदविभाग : क्लैब्यं, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परन्तप ॥

प्रतिपदार्थ : **पार्थ** = हे अर्जुन !, **क्लैब्यम्** = नपुंसकता को, **मा, स्म, गमः** = मत प्राप्त हो, **त्वयि** = तुझमें, **एतत्** = यह, **न, उपपद्यते** = उचित नहीं जान पड़ती ।, **परन्तप** = हे परंतपस्वी !, **क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्** = हृदय की तुच्छ दुर्बलता को, **त्यक्त्वा** = त्यागकर, **उत्तिष्ठ** = युद्ध के लिये खड़ा हो जा ।

तात्पर्य : हे अर्जुन! निराश मत होइए। यह आप जैसे महावीर के लिए अशोभनीय है। हे शत्रुओं को झुलसाने वाले! इस घटियापन नपुंसकता से छुटकारा पाओ और लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो जाओ।

विशिष्ट अर्थ : धार्मिक कार्य करने वालों में मन का असंतुलन उन्हें हतोत्साहित करता है। जो लोग कार्यों में माहिर हैं, उन्हें अपने ऊपर हताश को होवी नहीं होने देना चाहिए।

यह स्वामी विवेकानंद की सिंहगर्जन थी, जिन्होंने अमेरिका और इंग्लैंड के लोगों को "प्रिय भाइयों और बहनों" के रूप में संबोधित किया और उन्हें इन शब्दों से प्रेरित करते हुए कहा कि "आप क्षुद्र मन को छोड़ दें और कर्तव्यपरायण हो जाएँ।" गीता की इस सिंह गर्जना ने अरबिंदो घोष, तिलक, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी जैसे स्वतंत्रता सेनानियों को कर्तव्यपरायण बना दिया।

2. श्लोक : जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 2:27 ॥

पदविभाग : जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च,
तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि

प्रतिपदार्थ : **हि** = क्योंकि (इस मान्यता के अनुसार), **जातस्य** = जन्मे हुए की, **मृत्युः** = मृत्यु, **ध्रुवः** = निश्चित है, **च** = और, **मृतस्य** = मरे हुए का, **जन्म** = जन्म, **ध्रुवम्** = निश्चित है । **तस्मात्** = इससे (भी इस), **अपरिहार्ये** = बिना उपायवाले (निश्चित् होने वाले), **अर्थे** = विषय में, **त्वम्** = तुम, **शोचितुम्** = शोक करने के, **न, अर्हसि** = योग्य नहीं हो ।

तात्पर्य : जिनका जन्म होता है उनकी मृत्यु निश्चित है। इसी प्रकार मृत व्यक्ति भी अवश्य जन्म लेगा। इसलिए जो तुम्हारे हाथ में नहीं है उस पर शोक करना तुम्हारे लिए अनुचित है।

विशिष्ट अर्थ : वास्तव में स्वयं का कोई जन्म या मृत्यु नहीं है। लेकिन, यह श्लोक आम लोगों के लिए कहा गया है। मौत से कोई नहीं बच सकता। यह निश्चित है कि मृत्यु से मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों की गुणवत्ता के आधार पर पुनर्जन्म मिलना निश्चित है। हालाँकि, आत्म-ज्ञान प्राप्त करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता है। यह भगवान का विचार है कि जन्म-मृत्यु चक्र व्यक्तियों पर तभी तक लागू होता है जब तक वे आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं।

3. श्लोक : **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ 2:47 ॥

पदविभाग : कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, सङ्गः, अस्तु, अकर्मणि ॥

प्रतिपदार्थ : **ते** = तेरा, **कर्मणि** = कर्म करने में, **एव** = ही, **अधिकारः** = अधिकार है (उसके), **फलेषु** = फलों में, **कदाचन** = कभी भी, **मा** = नहीं । (इसलिये तू), **कर्मफलहेतुः** = कर्मो के फल का हेतु, **मा, भूः** = मत हो (तथा), **ते** = तेरी, **अकर्मणि** = कर्म न करने में (भी), **सङ्गः** = आसक्ति, **मा** = न, **अस्तु** = हो ।

तात्पर्य : आप केवल कर्म करने के लिए अधिकृत हैं। कर्म के फल के लिए कभी नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि आपको निष्क्रियता का सहारा लेना चाहिए। निश्चितार्थ यह है कि आपको कर्तव्य मन से और फल की अपेक्षा के बिना कार्यों में संलग्न होना है।

विशिष्ट अर्थ : मनुष्य कर्म के फल का इच्छुक है और इसलिए कर्म में संलग्न है। यदि वह उनके फल की अपेक्षा किए बिना कर्म करता है तो वह शुद्ध मन वाला हो जाता है, आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करता है। (उपरोक्त चित्र में एक बूढ़ा व्यक्ति आम का पौधा रोपता हुआ दीखता है। वह अच्छी तरह जानता है कि उस की आयु कम है। फल आने तक उसका जिन्दा रहना असंभव है। फिर भी वह आने वाली पीढ़ियों के लिये ऐसा करता है ।)

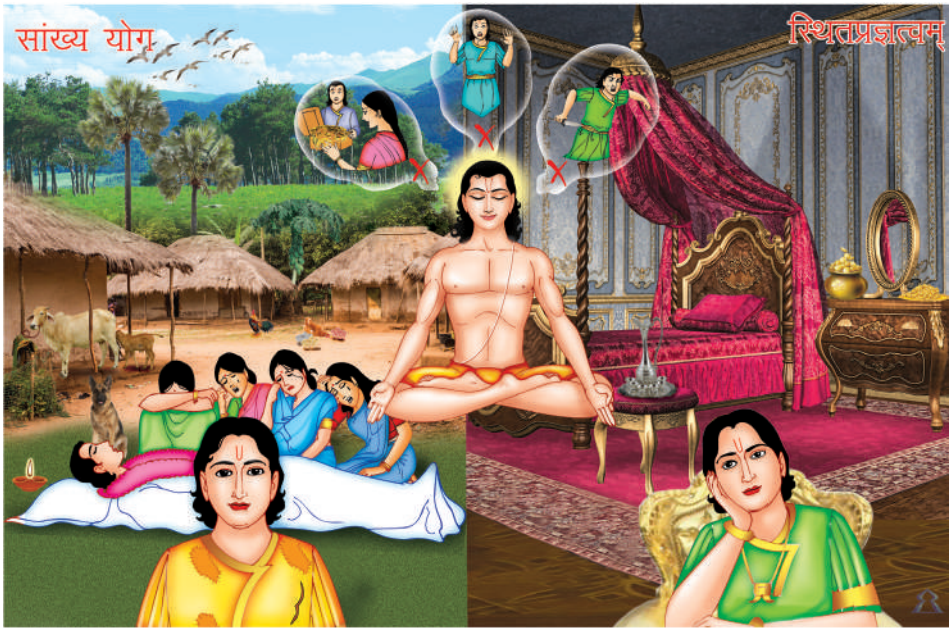

4. श्लोक : दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 2:56 ॥

पदविभाग : दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः सुखेषु, विगतस्पृहः,
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते ॥

प्रतिपदार्थ : दुःखेषु = दुःखों की प्राप्ति होनेपर, **अनुद्विग्नमनाः** =जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, **सुखेषु** = सुखों की प्राप्ति में, **विगतस्पृहः** = जो निःस्पृह (इच्छुक नहीं) है (तथा), **वीतराग भयक्रोधः** = जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, (ऐसा), **मुनिः** = मुनि, **स्थितधीः** = स्थिरबुद्धि, **उच्यते** = कहा जाता है ।

तात्पर्य : जो कठिनाइयों में दुखी नहीं होता, सुख-सुविधाओं में रुचि नहीं रखता और जिसमें राग, भय और क्रोध नहीं होता, वही स्थिरचित्त व्यक्ति होता है।

विशिष्ट अर्थ : एक आध्यात्मिक अभ्यासी के लिए पूरी कठिनाई अनियंत्रित इंद्रियों को नियंत्रित करने में होती है। इच्छाओं में मंडराने वाली इन्द्रियों का सूक्ष्म प्रबंध करना 'प्रतिभा' कहलाता है। नियंत्रित इंद्रियों को आंतरिक करना 'स्थिर दिमाग' है। सुख के समय में वासनाएँ घी डाली हुई अग्नि की भाँति तीव्र हो जाती हैं । उन्हें रोकने के लिए आध्यात्मिक अभ्यासी को उदासीन हो जाना चाहिए और राग, भय और क्रोध को छोड़ देना चाहिए। वह जो सुखी चीजों में अधिक प्रसन्न नहीं होता और दुखी चीजों में निराश नहीं होता और शांति बनाए रखता है। उन्हें समभाव (स्थितप्रज्ञ) के व्यक्ति के रूप में माना जाता है।

5. श्लोक : **ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।**
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ 2:62 ॥

पदविभाग : ध्यायतः, विषयान्, पुंसः सङ्गः, तेषु, उपजायते,
सङ्गात्, सञ्जायते, कामः कामात्, क्रोधः, अभिजायते ॥

प्रतिपदार्थ : **विषयान्** = विषयों का, **ध्यायतः** = चिन्तन करने वाले, **पुंसः** = पुरुष की, **तेषु** = उन विषयों में, **सङ्गः** = आसक्ति, **उपजायते** = हो जाती है, **सङ्गात्** = आसक्ति से, **कामः** = (उन विषयों की) कामना, **संजायते** = उत्पन्न होती है (और), **कामात्** = कामना (में विघ्न पड़ने) - से, **क्रोधः** = क्रोध, **अभिजायते** = उत्पन्न होता है ।

तात्पर्य : व्यक्ति जितना अधिक इंद्रिय विषयों के बारे में सोचता है, उतनी ही उनमें रुचि विकसित होती है। इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिए रुचि तेज होती है। आप के रुचिकर प्रक्रिया दैनंदिन कार्यों में कोई भी बाधा क्रोध का कारण बनती है।

विशिष्ट अर्थ : सबसे अच्छे दोस्त की तरह इच्छा और क्रोध साथ–साथ चलते हैं। वे मनुष्य को वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे वायु के सहारे लगी आग सब कुछ नष्ट कर देती है। इसलिए आध्यात्मिक साधकों को इच्छाओं और क्रोध से सावधान रहना चाहिए और उन्हें रोकना चाहिए।

6. श्लोक : **क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 2:63 ॥

पदविभाग : क्रोधात्, भवति, सम्मोहः सम्मोहात्, स्मृतिविभ्रमः,
स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति ॥

प्रतिपदार्थ : **क्रोधात्** = क्रोध से, **सम्मोहः** = अत्यन्त मूढ़भाव, **भवति** = उत्पन्न हो जाता है, **सम्मोहात्** = मूढ़भाव से, **स्मृतिविभ्रमः** = स्मृति में भ्रम हो जाता है, **स्मृतिभ्रंशात्** = स्मृति में भ्रम हो जाने से, **बुद्धिनाशः** = बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है (और), **बुद्धिनाशात्** = बुद्धि का नाश हो जाने से (पुरुष अपनी स्थिति से) **प्रणश्यति** = गिर जाता है ।

तात्पर्य : क्रोध का कारण अज्ञान है (सही और गलत के बारे में ज्ञान का अभाव)। अविद्या बुद्धि का नाश करती है। बुद्धि का नाश मनुष्य को निकम्मा बना देता है।

विशिष्ट अर्थ : जो व्यक्ति स्मृति शक्ति खो देता है वह ऐसी स्थिति में प्रवेश करता है, जहाँ वह कर्तव्यों और गैरकर्तव्यों के बीच अंतर नहीं जान पाता है।
ऐसा व्यक्ति कठोर, स्थिर, हिंसक, प्रतिहिंसक, अज्ञानी आदि हो जाता है। वह चारों सिद्धियों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के लिए अपात्र हो जाता है और विनाश का सामना करता है।

क्रोध से आंखें लाल हो जाती हैं, श्वास तेज हो जाती है। इन संकेतों को जानकर मनुष्य को सतर्क हो जाना चाहिए।

7. श्लोक : यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ 3:21 ॥

पदविभाग : यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः, सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते ॥

प्रतिपदार्थ : **श्रेष्ठः** = श्रेष्ठ पुरुष, **यत्, यत्** = जो-जो, **आचरति** = आचरण करता है, **इतरः** = अन्य, **जनः** = पुरुष (भी), **तत्, तत्** = वैसा-वैसा **एव** = ही (आचरण करते हैं)। **सः** = वह (श्रेष्ठ पुरुष), **यत्** = जो कुछ, **प्रमाणम्** = प्रमाण, **कुरुते** = कर देता है, **लोकः** = समस्त मनुष्य-समुदाय, **तत्** = उसी के, **अनुवर्तते** = अनुसार बरतने लग जाता है ।

तात्पर्य : सभी लोग महापुरुषों के मार्ग पर चलने का प्रयास करते हैं। चाहे वह सांसारिक कर्म हो या कोई वैदिक कर्मकांड, अन्य भी उसी तरह से इसे मान्यता के रूप में स्वीकार करते हैं।

विशिष्ट अर्थ : महापुरुषों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होगा। इसलिए यद्यपि उसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए कार्य करने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी उन्हें दूसरों के लिए एक उदाहरण स्थापित करने के लिए ही उन्हें कर्म करते रहना चाहिए। उनकी विचारधारा आम लोगों के उत्थान की ओर होगी।

8. श्लोक : **श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ 3:35 ॥

पदविभागः श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः ॥

प्रतिपदार्थ : **स्वनुष्ठितात्** = अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए, **परधर्मात्** = दूसरे के धर्म से, **विगुणः** = गुणरहित (भी), **स्वधर्मः** = अपना धर्म, **श्रेयान्** = अति उत्तम है । **स्वधर्मे** = अपने धर्म में (तो), **निधनम्** = मरना (भी) **श्रेयः** = कल्याणकारक है (और) **परधर्मः** = दूसरे का धर्म, **भयावहः** = भय को देने वाला है ।

तात्पर्य : भाव के अनुसार अपना कर्तव्य निभाना, भले ही कुछ दोषों से घिरा हो, बेहतर है। ऐसा कर्म करते समय मृत्यु भी शुभ होती है। दूसरे का कर्तव्य भले ही नेक इरादे से किया गया हो, लेकिन उसे मतलबी समझा जाता है। इससे नरक आदि का भय रहता है।

विशिष्ट अर्थ : लोगों के लिए उनके गुणों और स्वभाव के अनुसार कर्तव्यपूर्ण कार्यों को निर्धारित किया गया है। वैदिक और प्राचीन मानदंड सभी के लिए समान हैं। सत्यवादिता, ईश्वर के प्रति समर्पण, माता-पिता की सेवा, इंद्रियों पर नियंत्रण, अहिंसा, चोरी न करना, दया, दान, क्षमा आदि नैतिकता के रूप में सभी पर लागू होते हैं। इन्हें "गुण" कहा जाता है। निषिद्ध कार्यों में चोरी, व्यभिचार, झूठ, हिंसा, पाखंड आदि शामिल हैं जिन्हें "अवगुण" कहा जाता है । ये भी सभी पर लागू होते हैं। स्वधर्माचरण के लिए सम्राट शिबी की तत्परता और ऋषि विश्वामित्र का परधर्म का विचलन चित्र में दिखाया गया ।

9. श्लोक : **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ 4:7 ॥

पदविभाग : यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत,
अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम् ॥

प्रतिपदार्थ : **भारत** = हे भरत वंशज अर्जुन !, **यदा, यदा** = जब-जब, **धर्मस्य** = धर्म की, **ग्लानिः** = हानि (और), **अधर्मस्य** = अधर्म की, **अभ्युत्थानम्** = वृद्धि, **भवति** = होती है, **तदा** = तब-तब, **हि** = ही, **अहम्** = मैं, **आत्मानम्** = अपने रूप को, **सृजामि** = रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ ।

तात्पर्य : **जब भी धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है, हे भरतवंशज अर्जुन! मैं अपनी ही मायासे प्रकट होता हूँ ।**

विशिष्ट अर्थ : **"धर्मो रक्षति रक्षितः"। यदि धर्म की रक्षा की जाए तो वह धर्म सभी की रक्षा करता है। अधर्म को नष्ट करने और धार्मिकता को बनाए रखने के लिए ईश्वर अपनी इच्छा से स्वयं को कोई रूप के साथ प्रकट करते हैं। जब परमेश्वर स्वयं धार्मिकता को बनाए रखने का उपक्रम करते हैं, तो हमें उनकी छवियों के रूप में, अपने नैतिक दायित्वों का पालन करते हुए उनके उद्यम में भाग लेने की आवश्यकता है। सभी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके मन में अनैतिक विचार कभी न आने दें।**

10. श्लोक : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ 4:8 ॥

पदविभाग : परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे ॥

प्रतिपदार्थ : **साधूनाम्** = साधु पुरुषों का, **परित्राणाय** = उद्धार करनेके लिये, **दुष्कृताम्** = पाप-कर्म करनेवालों का, **विनाशाय** = विनाश करने के लिये, **च** = और, **धर्मसंस्थापनार्थाय** = धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने केलिये (मैं), **युगे**, **युगे** = हर - युग में, **सम्भवामि** = प्रकट हुआ करता हूँ ।

तात्पर्य : मैं सदाचारी जनों की रक्षा और पापी दुष्टों का नाश करने के लिए हर-युग में प्रकट होता हूँ।

विशिष्ट अर्थ : पूर्ण ब्रह्म जो सर्वशक्तिमान है, और अपने सभी भक्तों की देखभाल करने में सक्षम है। इस श्लोक में प्रभु यह आश्वासन दे रहे हैं कि अच्छे व्यवहार करने वाले लोग उनके अधीन सदैव सुरक्षित हैं। दुष्टों को दण्ड देना और सद्गुणियों की रक्षा करना और इस प्रकार संसार में धर्म की स्थापना करना ईश्वर का कर्तव्य है। तो वह हर युग में प्रकट होता है। भगवान की अभिव्यक्ति अनगिनत हैं। भागवतम् में भगवान के अवतारों को २४ बताया गया था। लेकिन उपरोक्त कारण से ज्ञानी धर्म रक्षक दस अवतारों को ही ध्यान में रखते हैं।

11. श्लोक : ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ 4:24 ॥

पदविभाग : ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

प्रतिपदार्थ : **अर्पणम्** = (जिस यज्ञ में) अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि (भी), **ब्रह्म** = ब्रह्म है (और), **हविः** = हवन किये जाने योग्य द्रव्य (भी), **ब्रह्म** = ब्रह्म है (तथा), **ब्रह्मणा** = ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा, **ब्रह्माग्नौ** = ब्रह्मरूप अग्नि में, **हुतम्** = आहुति देनारूप क्रिया (भी ब्रह्म है), **तेन** = उस, **ब्रह्मकर्मसमाधिना** = ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा, **गन्तव्यम्** = प्राप्त किये जाने योग्य (फल भी), **ब्रह्म** = ब्रह्म, **एव** = ही है ।

तात्पर्य : यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले हवि आदि सभी उपकरण ब्रह्म बताए गए हैं। अग्नि में चढ़ाए गए हवन द्रव्य को ब्रह्म कहा जाता है .. ब्रह्म के पास वह जाएगा जो अपने प्रत्येक कर्म में पूरी तरह से ब्रह्म का ध्यान करता है।

विशिष्ट अर्थ : उपनिषदों का सार यज्ञ के उदाहरण से भगवान ही समझा रहे हैं कि सारी सृष्टि ब्रह्म है । यज्ञ में प्रयुक्त सभी उपकरण, पवित्र घास, घी, चावल, यज्ञ करनेवाला, अग्नि में चढ़ाने की क्रिया, हवन सभी को सर्वोच्च ब्रह्मरूप माना जाता है और जो व्यक्ति उस तरह दर्शन करता है उसके सभी कार्य ब्रह्ममय हो जाते हैं ।

12. श्लोक : ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ 5:16 ॥

पदविभाग : ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः, तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम् ॥

प्रतिपदार्थ : **तु** = परंतु, **येषाम्** = जिनका, **तत्** = वह, **अज्ञानम्** = अज्ञान, **आत्मनः** = परमात्मा के, **ज्ञानेन** = तत्वज्ञान द्वारा, **नाशितम्** = नष्ट कर दिया गया है, **तेषाम्** = उनका (वह), **ज्ञानम्** = ज्ञान, **आदित्यवत्** = सूर्य के सदृश, **तत्परम्** = सच्चिदानन्दघन परमात्मा को, **प्रकाशयति** = प्रकाशित कर देता है ।

तात्पर्य : वासना से पैदा हुआ अज्ञान उन लोगों के लिए गायब हो जाता है जो स्वयं और सृष्टि की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह बादलों के चले जाने के बाद सूर्य की चमक के बराबर है ।

विशिष्ट अर्थ : तत्त्वज्ञान के द्वारा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर साधक का अज्ञान नष्ट हो जायेगा और ब्रह्म ज्ञान, ध्यान आदि की प्राप्ति के बाद सत्य स्पष्ट हो जाएगा। जैसे हवा द्वारा बादलों को दूर करने के बाद सूर्य की चमक दिखाई देती है।

13. श्लोक : **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।**
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ 6:5 ॥

पदविभाग : उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,
आत्मा, एव, हि, आत्मनः बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः ॥

प्रतिपदार्थ : **आत्मना** = अपने द्वारा, **आत्मानम्** = अपना (संसार-समुद्र से), **उद्धरेत्** = उद्धार करे (और), **आत्मानम्** = अपने को (अधोगति में), **न** = न, **अवसादयेत्** = डाले; **हि** = क्योंकि (यह मनुष्य), **आत्मा** = आप, **एव** = ही तो, **आत्मनः** = अपना, **बन्धुः** = मित्र है (और), **आत्मा** = आप, **एव** = ही, **आत्मनः** = अपना, **रिपुः** = शत्रु है ।

तात्पर्य : मनुष्य को अपने इन्द्रिय-पीड़ित मन से मुक्त होकर स्वयं का उत्थान करना है। उसे कभी भी इन्द्रियतृप्ति में नहीं उलझना चाहिए। मनुष्य का शुद्ध मन ही उसका विश्वस्त मित्र होता है। इन्द्रिय विषयों में रुचि रखने से अपना मन शत्रु होता है ।

विशिष्ट अर्थ : आँख, नाक और कान आदि इन्द्रियाँ स्थूल शरीर से अधिक योग्य हैं। निश्चयात्मक बुद्धि चंचल मन से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। आत्मा बुद्धि से भी श्रेष्ठ है क्योंकि उसके पास ज्ञान और कर्म की शक्ति है। क्रिया की शक्ति एक सामूहिक शक्ति है। सर्वोच्च भगवान मानव जाति को अपनी व्यक्तिगत आत्मा की ऊर्जा को जगाने (जानने) उससे मित्रता करने और एक आदर्श आत्मा बनने का आह्वान करते हैं।

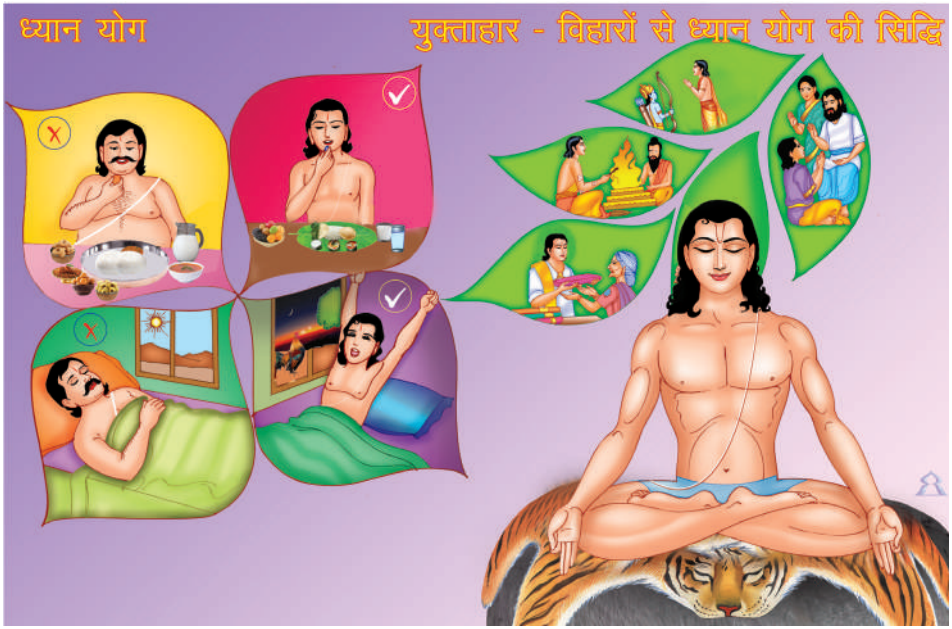

14. श्लोक : युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 6:17 ॥

पदविभाग : युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु,
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा ॥

प्रतिपदार्थ : दुःखहा = दुःखों का नाश करने वाला, **योगः** = योग (तो), **युक्ताहार विहारस्य** = यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, **कर्मसु** = कर्मो में, **युक्तचेष्टस्य** = यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का (और), **युक्तस्वप्नाव-बोधस्य** = यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का (ही सिद्ध), **भवति** = होता है ।

तात्पर्य : सभी दुखों को दूर करने वाले 'ध्यान योग' की प्राप्ति उस आध्यात्मिक अभ्यासी के लिए संभव है जो उत्तम व योग्य (मध्यम) भोजन करता है, उचित व्यवहार का पालन करता है, अपनी क्षमता के भीतर कार्यों में संलग्न होता है और उचित नींद और जागरण का आनंद लेता है।

विशिष्ट अर्थ : जो अधिक खाता है, भूखा रहता है, हमेशा जागता या सोता रहता है, अधिक काम करता है, आलस्य करता है, उसके लिए ध्यान योग संभव नहीं है। तो इस योग का अभ्यास करने वाले को सर्वोच्च भगवान द्वारा निर्धारित मानदंडों का पालन करना चाहिए।

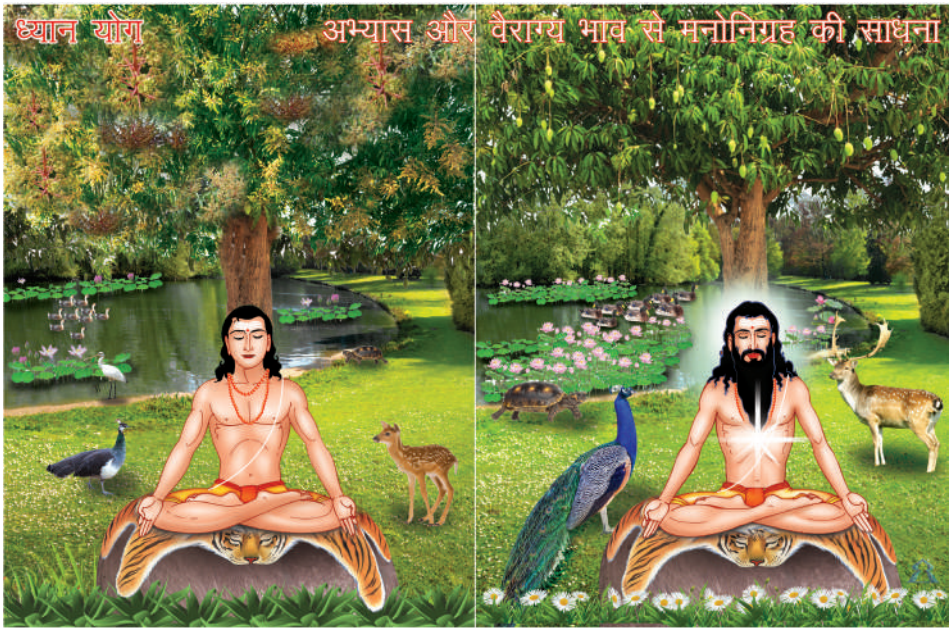

15. श्लोक : असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। 6:35 ।।

पदविभाग : असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्,
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ।।

प्रतिपदार्थ : **महाबाहो** = हे महाबाहो !, **असंशयम्** = निःसन्देह, **मनः** = मन, **चलम्** = चंचल (और), **दुर्निग्रहम्** = कठिनता से वश में होनेवाला है; **तु** = परंतु, **कौन्तेय** = हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! (यह), **अभ्यासेन** = अभ्यास, **च** = और, **वैराग्येण** = वैराग्य से, **गृह्यते** = वश में होता है ।

तात्पर्य : हे पराक्रमी अर्जुन ! निश्चय ही मन स्वाभाविक रूप से चंचल है। इसे नियंत्रित करना भी मुश्किल है। फिर भी, हे कुंती के पुत्र! निरंतर अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में किया जा सकता है।

विशिष्ट अर्थ : अर्जुन द्वारा मन की अडिग प्रकृति के बारे में पूछे जाने पर और हवा को रोकने के समान इसको रोकना कठिन है । ऐसी तुलना करने पर सर्वोच्च भगवान इस प्रकार उपदेश देते हैं:

हे पराक्रमी ! मन निश्चय ही चंचल है। ऐसे ही इस पर काबू पाना भी मुश्किल है। इसमें संशय नहीं है।

हालाँकि आप नियमित अभ्यास और वैराग्य नामक दो उपकरणों के साथ दिमाग पर पूरा नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं। मन को स्वयं में स्थिर करने का सतत प्रयास ही अभ्यास है। वैराग्य का अर्थ है सांसारिक वस्तुओं से स्वयं को अलग करना।

16. श्लोक : पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 6:40 ॥

पदविभाग : पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते,
न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति ॥

प्रतिपदार्थ : पार्थ = हे पार्थ !, **तस्य** = उस पुरुष का, **न** = न (तो), **इह** = इस लोकमें, **विनाशः** = विनाश, **विद्यते** = होता है (और), **न** = न, **अमुत्र** = परलोक में, **एव** = ही, **हि** = क्योंकि, **तात** = हे प्यारे!, **कल्याणकृत्** = आत्मोद्धार केलिये अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये कर्म करने वाला, **कश्चित्** = कोई भी मनुष्य, **दुर्गतिम्** = दुर्गति को, **न, गच्छति** = प्राप्त नहीं होता ।

तात्पर्य : हे पार्थ! असफल साधक के लिए इस लोक या परलोक में कोई बुरी दशा नहीं होती है। आत्म-उत्थान के साथ-साथ अच्छे कर्मों में लगे रहने वाले किसी भी व्यक्ति का कोई विपरिणाम नहीं होगा।

विशिष्ट अर्थ : अर्जुन ने भगवान से एक प्रश्न किया ''जो व्यक्ति योग में प्रवेश करता है, उसे पूरा किए बिना मर जाता है या योग अभ्यास से विचलित हो जाता तो, उसकी क्या स्थिति होगी ?

भगवान कहते हैंः जो भी व्यक्ति दुनिया के कल्याण के लिए कर्तव्यपूर्वक कर्म करता है, उसे न तो इस दुनिया में और न ही दूसरी दुनिया में कभी भी निम्नतम दर्जा प्राप्त नहीं होगा। इसलिए अभ्यासियों को दूसरों के कल्याण के लिए कार्यों में लगे लोगों के परिणाम के बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

17. श्लोक : मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ 7:3 ॥

पदविभाग : मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः ॥

प्रतिपदार्थ : **सहस्रेषु** = हजारों, **मनुष्याणाम्** = मनुष्यों में, **कश्चित्** = कोई एक, **सिद्धये** = मेरी प्राप्त के लिये, **यतति** = यत्न करता है (और उन), **यतताम्** = यत्न करने वाले, **सिद्धानाम्** = योगियों में, **अपि** = भी, **कश्चित्** = कोई एक (मेरे परायण होकर), **माम्** = मुझको, **तत्त्वतः** = तत्त्व से अर्थात् यथार्थरूप से, **वेत्ति** = जानता है ।

तात्पर्य : हे अर्जुन ! हजारों में कोई एक व्यक्ति होगा जो योग प्राप्ति (मोक्ष) के लिए प्रयास करेगा। हजारों में भी कोई एक व्यक्ति मेरे बारे में मूल रूप से जानता होगा।

विशिष्ट अर्थ : हजारों लोगों में से एक ही मेरे बारे में मूल रूप से जानता है। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे बेकार हैं। ज्ञान योग का मार्ग महत्वपूर्ण है और इसे प्राप्त करना कठिन है। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो लोग इस मार्ग में परमधाम को प्राप्त करते हैं, वे विरले से विरले होते हैं।

18. श्लोक : बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ 7:19 ॥

पदविभाग : बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः महात्मा, सुदुर्लभः ॥

प्रतिपदार्थ : **बहूनाम्** = बहुत, **जन्मनाम्** = जन्मों के, **अन्ते** = अन्त के जन्म में, **ज्ञानवान्** = तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, **सर्वम्** = सब कुछ, **वासुदेवः** = वासुदेव ही है, **इति** = इस प्रकार, **माम्** = मुझको, **प्रपद्यते** = भजता है, **सः** = वह, **महात्मा** = महात्मा, **सुदुर्लभः** = अत्यन्त दुर्लभ है ।

तात्पर्य : कई जन्म लेने के बाद, जो ज्ञानी बन जाता है और यह जान लेता है कि सब कुछ वासुदेव ही है। वे महात्मा जो सोचते हैं कि वासुदेव ही सभी आत्माओं का प्रतीक हैं ऐसा व्यक्ति अत्यंत दुर्लभ होता है।

विशिष्ट अर्थ : इस श्लोक का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि ज्ञान योग की प्राप्ति और अनेक जन्म लेने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसका वास्तव में अर्थ है कि जिस क्षण वह ज्ञान योग को प्राप्त कर लेता है, उसी क्षण उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। हम सामान्य लोग होने के नाते, हमें इस व्यापक विचार को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए कि संपूर्ण ब्रह्मांड एक विलक्षण आत्मा है, और महात्मा (महान आत्मा) बनने का प्रयास करना चाहिए।

19. श्लोक : **अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।**
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ 8:5 ॥

पदविभाग : अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः ॥

प्रतिपदार्थ : **यः** = जो पुरुष, **अन्तकाले,च** = अन्तकाल में भी, **माम्** = मुझको, **एव** = ही, **स्मरन्** = स्मरण करता हुआ, **कलेवरम्** = शरीर को, **मुक्त्वा** = त्यागकर, **प्रयाति** = जाता है, **सः** = वह, **मद्भावम्** = मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है, **अत्र** = इसमें (कुछ भी), **संशयः** = संशय, **न** = नहीं, **अस्ति** = है ।

तात्पर्य : हे कुंती के पुत्र! मेरे भक्त के मुझमें लीन होने के बारे में कोई संदेह नहीं है, यदि वह शरीर छोड़ते समय मुझे याद करता है तो वह मेरे ही स्वरूप को प्राप्त होता है ।

विशिष्ट अर्थ : सबसे बुरे पापी का भी भगवान द्वारा उद्धार निश्चित है यदि वह अपनी अंतिम सांस के समय बस मेरा नाम याद करता है। ऐसे संकट की घड़ी में अचानक कोई भी भगवान को याद नहीं कर सकता। जो नित्य भक्त है वह इस भयानक सांसारिक दुःख के जन्म-मृत्यु चक्र से निश्चय ही मुक्त हो जाएगा। इस प्रकार भगवान् ने स्पष्ट किया। (ऊपरकला चित्र में श्रीमद् भागवत् का अजामीलोपाख्यान उदाहरण दिया गया है ।)

20. श्लोक : आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 8:16 ॥

पदविभाग : आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन,
माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते ॥

प्रतिपदार्थ : **अर्जुन** = हे अर्जुन !, **आब्रह्मभुवनात्** = ब्रह्मलोक पर्यन्त, **लोकाः** = सब लोक, **पुनरावर्तिनः** = पुनरावर्ती हैं अर्थात् जिनको प्राप्त होकर फिर से संसार में आना पडे ऐसे लोक, **तु** = परंतु, **कौन्तेय** = हे कुन्तीपुत्र, **माम्** = मुझको, **उपेत्य** = प्राप्त होकर, **पुनर्जन्म** = पुनर्जन्म, **न** = नहीं, **विद्यते** = होता ।

तात्पर्य : हे कुंती पुत्र! मानव आत्माओं में पृथ्वी से उच्च लोकों की यात्रा करने की प्रकृति होती है, जो वापस लौटते हैं उन्हें अपनी दुनिया में जन्म लेना पड़ता है। (ये सभी लोक समयबद्ध हैं।) केवल सर्वोच्च भगवान समय से परे हैं। लेकिन जो मुझे प्राप्त करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।

विशिष्ट अर्थ : जो लोग पवित्र कर्म करते हैं, वे सात लोकों को प्राप्त करेंगे, अर्थात् 1. भूः(भूमि) 2. भुवः(पित्रृलोक) 3.स्वः(स्वर्ग) 4.महः(मुख्य देवगणों का लोक) 5.जनः (सनक, सनंद आदि महर्षियों का लोक) 6.तपः(तपोनिष्ठ) 7. सत्यम्(ब्रह्मलोक)। यह मुक्ति का क्रम है। ब्रह्मा की स्वरूप - भक्ति अर्थात् सगुण उपासना से प्राप्त ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो लोग विलासिता के भोग के विचार से कर्म करते हैं वे पुनर्जन्म के माध्यम से इस दुनिया में लौट रहे हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मलोक भी अनित्य है। परमात्मा ही सत्य है। जो उसे प्राप्त कर लेते हैं उनका कोई पुनर्जन्म नहीं होगा।

21. श्लोक : अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 9:22 ॥

पदविभाग : अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते,
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम् ॥

प्रतिपदार्थ : **ये** = जो, **अनन्याः** = अनन्य प्रेमी, **जनाः** = भक्तजन, **माम्** = मुझ परमेश्वर को, **चिन्तयन्तः** = निरन्तर चिन्तन करते हुए, **पर्युपासते** = निष्काम भाव से भजते हैं, **तेषाम्** = उन, **नित्याभियुक्तानाम्** = नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों को, **योगक्षेमम्** = योगक्षेम (कुशल क्षेम), **अहम्** = मैं स्वयं, **वहामि** = प्राप्त करा देता हूँ ।

तात्पर्य : जो केवल मेरा ही चिन्तन करते हैं, और निष्कामभाव से भजते है, किसी दूसरे का विचार नहीं करते हैं। उन लोगों का योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ ।

विशिष्ट अर्थ : अतुलनीय भक्त अपने लिए कुछ भी नहीं चाहते हैं। इसलिए मैं उनकी जरूरतों और कल्याण का ख्याल रखने का आश्वासन देता हूँ । जो ज्ञानी योगी यह जानता है कि ईश्वर से भिन्न कुछ भी नहीं है, वह अपनी आवश्यकताओं और प्रगति का ध्यान नहीं रखता। तो भगवान स्वयं उनकी जिम्मेदारी लेते हैं।

22. श्लोक : **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।**
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ 9:26 ॥

पदविभाग : पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति,
तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः ॥

प्रतिपदार्थ : **यः** = जो (कोई भक्त), **मे** = मेरे लिये, **भक्त्या** = प्रेम से, **पत्रम्** = पत्र, **पुष्पम्** = पुष्प, **फलम्** = फल, **तोयम्** = जल आदि, **प्रयच्छति** = अर्पण करता है, **प्रयतात्मनः** = (उस) शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका, **भक्त्युपहृतम्** = प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ, **तत्** = वह (पत्र-पुष्पादि), **अहम्** = मैं (सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति के सहित), **अश्नामि** = खाता हूँ ।

तात्पर्य : **वह जो मुझे शुद्ध भक्ति के साथ एक पत्ता, एक फूल, एक फल, थोडी जल अर्पित करता है, उसे मैं अत्यंत पसंद के साथ स्वीकार करता हूँ ।**

विशिष्ट अर्थ : **भगवान को पत्ते, फूल, फल आदि चीजों के मूल्य के बारे में कोई चिंता नहीं है। भगवान शुद्ध और इच्छाहीन भक्ति के आधार पर अपनी कृपा बरसाते हैं। ईश्वर केवल न्यारे कर्मों से ही प्रसन्न होते हैं, बहुमूल्य उपहारों से नहीं। (तुलसी दल से रुक्मिणी, कमल से गजेंद्र, जल से रंतिदेव और फलों से शबरी को भगवान की कृपा प्राप्त हुई जैसा कि आप चित्र में देख सकते हैं ।)**

23. श्लोक : अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ 10:20 ॥

पदविभाग : अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः,
अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च ॥

प्रतिपदार्थ : गुडाकेश = हे निद्राविजयी अर्जुन !, **अहम्** = मैं, **सर्वभूताशयस्थितः** = सब भूतों के हृदय में स्थित, **आत्मा** = सबका आत्मा हूँ, **च** = तथा, **भूतानाम्** = सम्पूर्ण भूतों का, **आदिः** = आदि, **मध्यम्** = मध्य, **च** = और, **अन्तः** = अन्त, **च** = भी, **अहम्** = मैं, **एव** = ही हूँ ।

तात्पर्य : हे गुडाकेश! (नींद को जीतने वाले अर्जुन !) प्राणियों के हृदय में स्थित स्वयं आत्म तत्व मैं ही हूँ । मैं सभी प्राणियों का आदि, मध्य और अंत भी हूँ।

विशिष्ट अर्थ : हमें यह समझना चाहिए कि देवत्व, सभी प्राणियों में स्वयं के रूप में निहित है और वही उनके जन्म, विकास और पतन का कारण है। अखंड अद्वैत ज्ञान कहता है कि आत्मा स्वयं ही **परमात्मा** है। इसलिए मनुष्य को सभी प्राणियों के साथ समभाव रखना चाहिए।

24. श्लोक : यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ 10:41 ॥

पदविभाग : यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्त्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा,
तत्, तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंऽशसम्भवम् ॥

प्रतिपदार्थ : यत्, यत् = जो, जो, **एव** = भी, **विभूतिमत्** = विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, **श्रीमत्** = कान्तियुक्त, **वा** = और, **ऊर्जितम्** = शक्तियुक्त, **सत्त्वम्** = वस्तु है, **तत्, तत्** = उस-उसको, **त्वम्** = तू, **मम** = मेरे, **तेजोंऽशसम्भवम् एव** = तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति, **अवगच्छ** = जान ।

तात्पर्य : हे अर्जुन! जो भी महिमामय, प्रकाशमान् और शक्तिशाली है, उसे मेरे वैभव का अंश समझो।

विशिष्ट अर्थ : हमें यह समझना चाहिए कि सभी समृद्ध, चमकदार और शक्तिशाली चीजें परमात्मा से आत्म-चेतना प्राप्त करती हैं। संसार के सभी चल प्राणी और अचल वस्तुएँ उसके सूक्ष्म पहलू हैं। यह ज्ञान हम में अहंकार और ममकार को दूर करने और सभी के प्रति समत्व विकसित करने में मदद करता है।

25. श्लोक : भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ 11:54 ॥

पदविभाग : भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन,
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परन्तप ॥

प्रतिपदार्थ : **तु** = परंतु, **परन्तप** = हे परम तपस्वी, **अर्जुन** = अर्जुन !, **अनन्यया, भक्त्या** = अनन्यभक्ति के द्वारा, **एवंविधः** = इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला, **अहम्** = मैं, **द्रष्टुम्** = प्रत्यक्ष देखने के लिये, **तत्त्वेन** = तत्त्व से, **ज्ञातुम्** = जानने के लिये, **च** = तथा, **प्रवेष्टुम्** = प्रवेश करने के लिये अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिये, **च** = भी, **शक्यः** = शक्य हूँ ।

तात्पर्य : चार भुजाओं वाला मेरा यह सार्वभौम रूप जो आपने अभी प्रत्यक्ष देखा है, उसको सार रूप में जानना और मुझ में अद्वैत रूप से विलीन होना केवल अनन्य भक्ति से ही संभव है ।

विशिष्ट अर्थ : परमात्मा की भक्ति के बिना वेदों का अध्ययन, कठोर तपस्या, यज्ञ, दान आदि से भी भगवान को नहीं देखा जा सकता। किसी अन्य के विचार के बिना भगवान के साथ अनन्य घनिष्ठ भक्ति ही व्यक्ति को परम आत्मा को सार रूप में जानने, कल्पना करने और अंत में उसमें विलीन होने में सक्षम बनाती है। यह पूर्ण अद्वैतवाद है।

26. श्लोक : मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ 11:55 ॥

पदविभाग : मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, संङ्गवर्जितः,
निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव ॥

प्रतिपदार्थ : पाण्डव = हे अर्जुन !, **यः** = जो पुरुष केवल, **मत्कर्मकृत्** = मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को करनेवाला है, **मत्परमः** = मेरे परायण है, **मद्भक्तः** = मेरा भक्त है, **संङ्गवर्जितः** = आसक्ति रहित है, **सर्वभूतेषु** = सम्पूर्ण भूत प्राणियों में, **निर्वैरः** = वैरभाव से रहित है, **सः** = वह (अनन्यभक्तियुक्त पुरुष), **माम्** = मुझको (ही), **एति** = प्राप्त होता है ।

तात्पर्य : हे पांडु पुत्र ! वह अंतरंग भक्त जो ध्यान और भक्ति के साथ अपने सभी सांसारिक, वैदिक और कर्तव्यपूर्ण **कार्यों** को मुझे समर्पित करता है और मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानता है, सांसारिक वस्तुओं में वैराग्य और समस्त प्राणियों के प्रति शत्रु भाव के बिना रहता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है। इसका मतलब है कि वह मुक्ति की पूर्ण स्थिति को प्राप्त करता है।

विशिष्ट अर्थ : पूर्ण दार्शनिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए 'पंचकर्म साधना' की सिफारिश की गयी है। १. मत्कर्मकृत् = निःस्वार्थ भाव से मुझे ही वैदिक और कर्तव्यपरायण कर्मों को अर्पित करना, २. मत्परमः = अंतिम लक्ष्य के रूप में केवल मुझे ही देखना, ३. मद्भक्तः = हमेशा और हर जगह मेरी महिमा की प्रशंसा करना क्योंकि मैं सभी आत्माओं का अंश हूँ। ४.संगवर्जितः = बाह्य वस्तुओं में वैराग्य धारण करना ५. निर्वैरःसर्वभूतेषु = किसी भी प्राणी के प्रति वैर भाव न रखना और उनके प्रति प्रेम एवं करुणा दिखाना । जिसके पास ये पाँच सद्गुण हैं, वह मुझे ही प्राप्त करता है।

27. श्लोक : अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ 12:13 ॥

पदविभाग : अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च,
निर्ममः, निरहङ्कारः, समदुःखसुखः, क्षमी ॥

प्रतिपदार्थ : सर्वभूतानाम् = सब भूतों में, **अद्वेष्टा** = द्वेष-भाव से रहित, **मैत्रः** = स्वार्थ रहित सबका प्रेमी, **च** = और, **करुणः** = हेतुरहित दयालु है, **एव** = तथा, **निर्ममः** = ममता से रहित, **निरहङ्कारः** = अहंकार से रहित, **समदुःखसुखः** = सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम (और), **क्षमी** = क्षमावान् है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देनेवाला है।

तात्पर्य : जो किसी भी प्राणी से घृणा नहीं करता है और सभी प्राणियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है, बिना कारण दयालु है, किसी भी चीज के साथ कोई लगाव नहीं है, गैर अहंकारी, दुःख और सुख में नफरत या प्यार नहीं दिखाता तथा क्षमावान् है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

विशिष्ट अर्थ : उपरोक्त श्लोक में वर्णित सभी गुण ब्रह्म के शांतिपूर्ण गुण हैं। भगवान कहते हैं कि इन गुणों वाले ज्ञानी मुझे प्रिय हैं । (ऐसे सद्गुण वाला आदर्श कविराज श्रीनाथ का उदाहरण चित्र में शामिल है)।

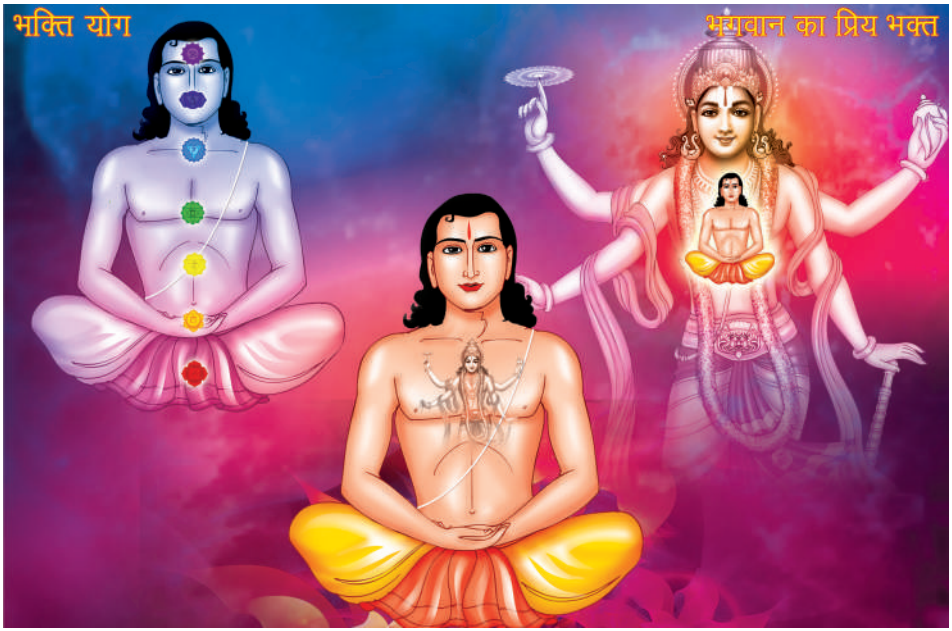

28. श्लोक : सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 12:14 ॥

पदविभाग : सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा , दृढनिश्चयः,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥

प्रतिपदार्थ : यः = जो पुरुष, **योगी** = योगी, **सततम्** = निरन्तर, **सन्तुष्टः** = संतुष्ट है, **यतात्मा** = मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है (और), **दृढनिश्चयः** = मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है, **सः** = वह, **मयि** = मुझमें, **अर्पितमनोबुद्धिः** = अर्पण किये हुए मन-बुद्धि वाला, **मद्भक्तः** = मेरा भक्त, **मे** = मुझको, **प्रियः** = प्रिय है ।

तात्पर्य : जो सभी परिस्थितियों में आत्मसंतुष्ट है, शरीर और मन का संयम रखता है, और दृढ़ निश्चयात्मक ज्ञान (स्थिर व्यक्ति) है, अपने मन और बुद्धि के साथ भगवान को समर्पित है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

विशिष्ट अर्थ : भक्ति योग में श्री भगवान ने (निराकार परमात्मा के ३५ गुण वर्णित किये) पिछले 'अद्वेष्टा' श्लोक के सात और प्रस्तुत श्लोक के पाँच गुण भी उन परमात्मा के ही हैं । इन गुणों वाले को भगवान अपना प्रिय भक्त कहते हैं ।

29. श्लोक : सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ 13:13 ॥

पदविभाग : सर्वतःपाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति ॥

प्रतिपदार्थ : **तत्** = वह, **सर्वतःपाणिपादम्** = सब ओर हाथ-पैरवाला, **सर्वतोऽक्षि-शिरोमुखम्** = सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला (तथा), **सर्वतःश्रुतिमत्** = सब ओर कानवाला है ।, (**यतः**) = क्योंकि (वह), **लोके** = संसार में, **सर्वम्** = सबको, **आवृत्य** = व्याप्त करके, **तिष्ठति** = स्थित है ।

तात्पर्य : इस ब्रह्म के हाथ, पैर, आँख, सिर, मुख और कान संसार के सभी प्राणियों और अचल श्रेणियों के संग्रह में फैले हुए हैं।

विशिष्ट अर्थ : जिस ब्रह्म का उल्लेख वेदों में किया गया था, उसके कोई अंग नहीं हैं। लेकिन भगवान ने इस तरह से ब्रह्म की सर्वव्यापकता पर जोर देने के लिए हाथ, पैर, आँख, सिर आदि जैसे अंगों के रूप में समझाया। श्लोक का केंद्रीय विचार यह है कि ईश्वर सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में विद्यमान है और सभी का साक्षी है।

30. श्लोक : समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।। 13:28 ।।

पदविभाग : समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्,
न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम् ।।

प्रतिपदार्थ : हि = क्योंकि (जो पुरुष), **सर्वत्र** = सबमें, **समवस्थितम्** = समभाव से स्थित, **ईश्वरम्** = परमेश्वर को, **समम्** = समान, **पश्यन्** = देखता हुआ, **आत्मना** = अपने द्वारा, **आत्मानम्** = अपने को, **न हिनस्ति** = नष्ट नहीं करता, **ततः** = इससे (वह), **पराम्** = परम, **गतिम्** = गति को, **याति** = प्राप्त होता है ।

तात्पर्य : जो यह जानता है कि देवत्व सभी प्राणियों में समान रूप से विराजमान है, तब मनुष्य स्वयं को चोट नहीं पहुंचाता है। इसका मतलब है कि वह खुद को नष्ट नहीं करेगा तो, वह सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करता है।

विशिष्ट अर्थ : जिस व्यक्ति को यह ज्ञान है कि परमात्मा सभी प्राणियों में फैला हुआ है, वह आध्यात्मिक रूप से स्वयं को मुक्त कर सकेगा। इसी जन्म में उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। लेकिन जिसके पास इस तरह के ज्ञान की कमी है, वह खुद को (आत्म हत्यारा) मारने वाला माना जाता है। यानी उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं मिल सकता।

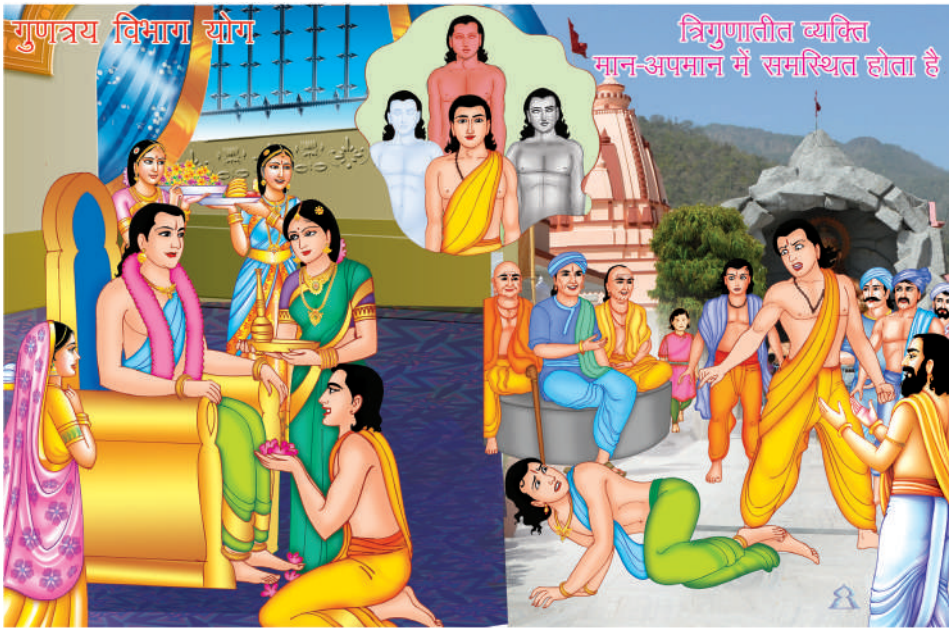

31. श्लोक : मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ 14:25 ॥

पदविभाग : मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते ॥

प्रतिपदार्थ : **मानापमानयोः** = जो मान और अपमान में, **तुल्यः** = सम है, **मित्रारिपक्षयोः** = मित्र और वैरी के पक्ष में (भी) **तुल्यः** = सम है (एवं), **सर्वारम्भपरित्यागी** = सम्पूर्ण आरम्भों में कर्तृपन के अभिमान से रहित है, **सः** = वह पुरुष, **गुणातीतः** = गुणातीत, **उच्यते** = कहा जाता है ।

तात्पर्य : जो मान-अपमान (सत्कार या पराभव) में सम स्थिति में रहता है तथा मित्र और शत्रु के साथ भी समता भाव से व्यवहार करता है, जो शरीर के रखरखाव के लिए आवश्यक कार्यों के अलावा अन्य कार्यों में संलग्न नहीं होता है, वह तीन मूल गुणों के प्रभाव से परे रहेगा।

विशिष्ट अर्थ : जिसका मन सदा परमब्रह्म की स्थिति में रहता है, वह तीन मूल गुणों से परे है, उसे सांसारिक चीजों की कोई परवाह नहीं है। उस के मन में किसी तरह के विकार भी नहीं रहते। साधकों को यह जानना चाहिए कि मान-अपमान, प्रिय-अप्रिय, मित्र-शत्रु, निंदा-स्तुति इत्यादि भावों में समत्व तथा प्रापंचिक चीजों में मोह आदि भाव विकारों को केवल साधारण व्यक्ति में और गुणातीत में अंतर दिखाने के लिए ही कहा गया है ।

32. श्लोक : शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ 15:8 ॥

पदविभाग : शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः,
गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात् ॥

प्रतिपदार्थ : वायुः = वायु, **आशयात्** = गन्ध के स्थान से, **गन्धान्** = गन्ध को, **इव** = जैसे (ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही), **ईश्वरः** = देहादि का स्वामी जीवात्मा, **अपि** = भी, **यत्** = जिस (शरीर का), **उत्क्रामति** = त्याग करता है, **(तस्मात्)** = उससे, **एतानि** = इन मनसहित इन्द्रियों को, **गृहीत्वा** = ग्रहण करके, **च** = फिर, **यत्** = जिस, **शरीरम्** = शरीर को, **अवाप्नोति** = प्राप्त होता है, **(तस्मिन्)** = उसमें, **संयाति** = जाता है ।

तात्पर्य : मृत्यु के समय शरीर को छोड़कर आत्मा मन और पाँचों इंद्रियों को दूर ले जाती है और एक नए शरीर में प्रवेश करती है जैसे हवा सुगंध को फूल से अलग कर अपने साथ ले जाती है।

विशिष्ट अर्थ : "मृत्यु के बाद आदमी का क्या होता है?". प्राचीन भारतीय शास्त्रों के अलावा विश्व साहित्य में इस प्रश्न का कोई विशिष्ट उत्तर नहीं है। भगवान द्वारा प्रकट किया गया यह विशेष श्लोक इस प्रश्न का सही उत्तर है। उपरोक्त तुलना को जानने के बाद, आध्यात्मिक अभ्यासियों को इस सत्य को जानना चाहिए कि वह शरीर नहीं है, देह के बिना अन्यतम विशुद्ध स्वरूप केवल आत्मा ही है।

33. श्लोक : **अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।**
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ 15:14 ॥

पदविभाग : अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम् ॥

प्रतिपदार्थ : **अहम्** = मैं (ही), **प्राणिनाम्** = सब प्राणियों के, **देहम्** = शरीर में, **आश्रितः** = स्थित रहने वाला, **प्राणापानसमायुक्तः** = प्राण और अपान से संयुक्त, **वैश्वानरः** = वैश्वानर अग्निरूप, **भूत्वा** = होकर, **चतुर्विधम्** = चार प्रकार के, **अन्नम्** = अन्न को, **पचामि** = पचाता हूँ ।

तात्पर्य : **मैं सभी जीवों के शरीर में भूख (वैश्वानराग्नि) के रूप में प्राण और अपान तथा श्वास और निश्वास के रूप में निवास करता हूँ। और चार प्रकार के खाद्य पदार्थ का पाचन करता हूँ।**

विशिष्ट अर्थ : अर्थात् भक्ष्य (रोटी, चावल, सब्जी आदि) पेय (जीभ के साथ तरल पदार्थ), चोष्य (गन्ना, आम आदि) और लेह्य (शहद, गुड़ आदि) पदार्थों को पाचन करता हूँ । भगवान् प्राणियों में **वैश्वानराग्नि** (भूख) के रूप में भूख पैदा करते हैं और भोजन को पचाते हैं, पचे हुए भोजन को आत्मसात करते हैं और अवशिष्ट पदार्थ को विसर्जन भी करते हैं। प्राणियों द्वारा लिए गए खाद्य पदार्थों में रोटी, चावल, सब्जियां जैसे ठोस पदार्थ, दूध, पानी जैसे तरल पदार्थ का रस आदि पेय पदार्थ तथा गन्ना, आम आदि चूसने योग्य चोष्य पदार्थ, जिनके रेशे आदि बाहर थूकते हैं तथा शहद, गुड़ आदि लेह्य पदार्थ भी इसमें शामिल हैं।

34. श्लोक : त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ 16:21 ॥

पदविभाग : त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत् ॥

प्रतिपदार्थ : **कामः** = काम, **क्रोधः** = क्रोध, **तथा** = तथा, **लोभः** = लोभ, **इदम्** = ये, **त्रिविधम्** = तीन प्रकार के, **नरकस्य** = नरक के, **द्वारम्** = द्वार, **आत्मनः** = आत्मा का, **नाशनम्** = नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जानेवाले हैं ।, **तस्मात्** = अतएव, **एतत्** = इन, **त्रयम्** = तीनों को, **त्यजेत्** = त्याग देना चाहिये ।

तात्पर्य : काम, क्रोध और लोभ ये तीन द्वार हैं जो नरक की ओर ले जाते हैं। उनके कारण ही मनुष्य अपने विनाश को आमंत्रित करता है। इसलिए पुरुषों को उन्हें छोड़ना होगा।

विशिष्ट अर्थ : काम, क्रोध और लोभ सभी आसुरी गुणों के मूल कारण हैं और वे ही आत्मा को हानि पहुँचाते हैं। यदि कोई इन तीनों गुणों को छोड़ दे तो, सभी आसुरी गुण समाप्त हो जाएँगे। इसके बजाय व्यक्ति को ईश्वरीय गुणों के अभ्यास द्वारा उच्च स्थितियों को प्राप्त करना चाहिए।

35. श्लोक : तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ 16:24 ॥

पदविभाग : तस्मात्, शाास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि ॥

प्रतिपदार्थ : **तस्मात्** = इससे, **ते** = तेरे लिये, **इह** = इस, **कार्याकार्यव्यवस्थितौ** = कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में, **शाास्त्रम्** = शास्त्र (ही), **प्रमाणम्** = प्रमाण है ।, **(एवम्)** = ऐसा, **ज्ञात्वा** = जानकर (तू), **शास्त्रविधानोक्तम्** = शास्त्रविधि से नियत, **कर्म** = कर्म (ही), **कर्तुम्** = करने, **अर्हसि** = योग्य है ।

तात्पर्य : कर्तव्य और अधर्म का निर्धारण करने का आधार शास्त्र ही है। इसलिए धर्मशास्त्र ग्रन्थों के माध्यम से कर्तव्य कर्मो को जानकर उनका पालन करना चाहिए।

विशिष्ट अर्थ : शास्त्रों के माध्यम से यह जानना चाहिए कि नेक कार्य क्या है और क्या नहीं। वेद, स्मृति, महाकाव्य और काव्य रामायण और महाभारत इतिहास आदि शास्त्रों के द्वारा आप जान सकते हैं कि कौन से कार्यो की अनुमति है और क्या निषिद्ध है। कर्म ही मन की पवित्रता, ज्ञान और मोक्ष का आधार है। इसलिए अनुमोदित कार्यो को करना चाहिए और निषिद्ध कार्यो से बचना चाहिए।

36. श्लोक : अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ 17:15 ॥

पदविभाग : अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते ॥

प्रतिपदार्थ : **यत्** = जो, **अनुद्वेगकरम्** = उद्वेग न करने वाला, **प्रियहितम्** = प्रिय और हितकारक, **च** = एवं, **सत्यम्** = यथार्थ, **वाक्यम्** = भाषण है, **च** = तथा (जो), **स्वाध्याय-अभ्यसनम्** = वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है, **(तत्) एव** = वही, **वाङ्मयम्** = वाणीसम्बन्धी, **तपः** = तप, **उच्यते** = कहा जाता है ।

तात्पर्य : किसी को भी उद्विग्न न करनेवाला, प्रिय और हितकारक, सत्य-यथार्थ भाषण करना तथा वेद-शास्त्रों का पठन करना, प्रणवादि नाम-मन्त्र जप का अभ्यास करना वाचिक तप कहा जाता है ।

विशिष्ट अर्थ : जब हम दूसरों से बातचीत करते हैं, तब अपनी बातों में बिना उद्वेग, सत्य, प्रिय, हितकारक नामक चार लक्षण होते हैं, उसको "वाङ्मय तप" कहा जाता है । इनमें से कोई एक लक्षण का भी लोप हो तो, वह "वाङ्मय तप" नहीं होगा ।

श्रीमद् रामायण के सुन्दरकाण्ड में नवव्याकरण पण्डित श्री हनुमानजी के द्वारा बोले गये दो ही शब्दों - "दृष्टा देवी" - (सीताजी को देखा) - ने उद्विग्न न करनेवाले, सत्य-यथार्थ वचन जो प्रिय एवं हितकारक नामक चार लक्षणों से समन्वित दो शब्दों को हनुमान जी के श्रीमुखसे कहने मात्र से ही उजाड़ मन वाले श्रीरामजी और लक्ष्मण के लिए अमृत की, बौछार होकर, उन दोनों को परमानन्द भरित कर दिया है ।

37. श्लोक : यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ 18:5 ॥

पदविभाग : यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम् ॥

प्रतिपदार्थ : **यज्ञदानतपःकर्म** = यज्ञ, दान और तपरूप कर्म, **न, त्याज्यम्** = त्याग करने के योग्य नहीं है, (बल्कि), **तत्** = वह (तो), **एव** = अवश्य, **कार्यम्** = कर्तव्य है; क्योंकि, **यज्ञः** = यज्ञ, **दानम्** = दान, **च** = और, **तपः** = तप-(ये तीनों), **एव** = ही (कर्म), **मनीषिणाम्** = बुद्धिमान् पुरुषों को, **पावनानि** = पवित्र करनेवाले हैं ।

तात्पर्य : हे अर्जुन! **यज्ञ,** दान और तपस्या के कर्तव्यपूर्ण कार्यों को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जो बिना फल की इच्छा के कर्म करता है ये तीन क्रियाँए उनको शुद्ध मन और स्पष्ट दिमाग देते है।

विशिष्ट अर्थ : यज्ञ को केवल अग्नि अनुष्ठान ही नहीं मानना चाहिए। जैसे जो चौथे अध्याय में वर्णित बारह यज्ञों को करता है और अपनी क्षमता के अनुसार दान करता है। तपस्या का अर्थ है अपने मन को किसी विशेष लक्ष्य पर केंद्रित करना। तपस्या से ज्ञानी और वैज्ञानिक बन सकते हैं। मन–वचन और कर्म का मिलन त्याग, तपस्या और दान से होता है। और वह आत्मज्ञानी हो जाता है। इसलिए इन तीनों को कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

38. श्लोक : **यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।**
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ 18:46 ॥

पदविभाग : यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिं, विन्दति, मानवः ॥

प्रतिपदार्थ : **यतः** = जिस परमेश्वर से, **भूतानाम्** = सम्पूर्ण प्राणियों की, **प्रवृत्तिः** = उत्पत्ति हुई है (और), **येन** = जिस से, **इदम्** = यह, **सर्वम्** = समस्त (जगत्), **ततम्** = व्याप्त है, **तम्** = उस परमेश्वर की, **स्वकर्मणा** = अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा, **अभ्यर्च्य** = पूजा करके, **मानवः** = मनुष्य, **सिद्धिं** = परम सिद्धि को, **विन्दति** = प्राप्त हो जाता है ।

तात्पर्य : मनुष्य को ईश्वर की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह प्राणियों का जनक है और प्रकृति जो उनकी ही सृष्टि है वही दुनिया में रहने का कारण बनता है और जिससे सारा संसार भरा हुआ है।

विशिष्ट अर्थ : भगवान कहते हैं कि मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुसार नियत कर्मों को करना चाहिए और भगवान की पूजा करके ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। फलदायक कर्म मोक्ष की ओर नहीं ले जा सकते । वे उन्हें कर्म करते हुए कर्म के फल को **ईश्वरार्पण** करने की सलाह देते हैं । उन्होंने सुझाव दिया कि यह ही भगवान की सबसे अच्छी पूजा है।

39. श्लोक : सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 18:66 ॥

पदविभाग : सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः ॥

प्रतिपदार्थ : सर्वधर्मान् = सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को (मुझमें), **परित्यज्य** = त्यागकर (तू केवल), **एकम्** = एक, **माम्** = मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही, **शरणम्** = शरण में, **व्रज** = आ जा, **अहम्** = मैं, **त्वा** = तुझे, **सर्वपापेभ्यः** = सम्पूर्ण पापों से, **मोक्षयिष्यामि** = मुक्त कर दूँगा, (तू), **मा, शुचः** = शोक मत कर ।

तात्पर्य : भगवान कहते हैं कि आप अपने सभी कर्तव्यपूर्ण कार्यों को मुझे समर्पित करें। मैं आपको सभी पापों से मुक्त कर दूंगा।

विशिष्ट अर्थ : गीता संदेश में, भगवान सिखाते हैं कि वह संदेश न केवल अर्जुन के लिए था बल्कि सभी मानव जाति के लिए उद्देशित था। कर्म, भक्ति, ज्ञान और ध्यान योग के सभी प्रकार के मार्ग पालन करने योग्य हैं। यदि लोग अज्ञानता या भ्रम के प्रभाव के कारण ज्यादातर उनका अनुसरण करने में असमर्थ होंगे, तो उन्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिए एक सरल और गुप्त तरीका है। वह है **''ईश्वर को सम्पूर्ण समर्पण'', जो परम श्रेष्ठ है।**

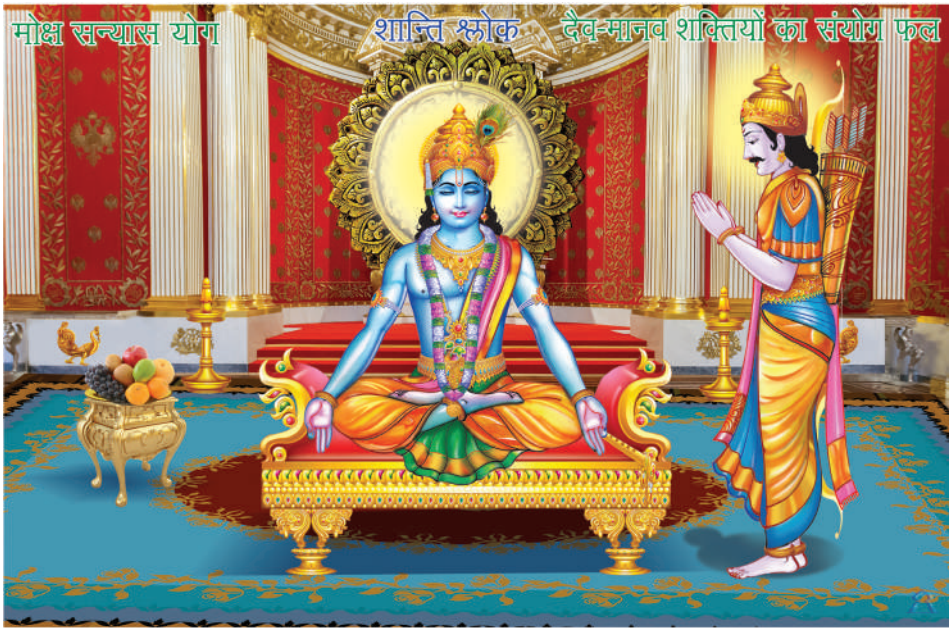

संजय उवाच :

40. श्लोक : यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ 18:78 ॥

पदविभाग : यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः धनुर्धरः,
तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम ॥

प्रतिपदार्थ : **यत्र** = जहाँ, **योगेश्वरः** = योगेश्वर, **कृष्णः** = भगवान् श्रीकृष्ण हैं (और), **यत्र** = जहाँ, **धनुर्धरः** = गाण्डीव-धनुषधारी, **पार्थ** = अर्जुन हैं, **तत्र** = वहीं पर, **श्रीः** = श्री, **विजयः** = विजय, **भूतिः** = विभूति (और), **ध्रुवा** = अचल, **नीतिः** = नीति है, **(इति)** = ऐसा, **मम** = मेरा, **मतिः** = मत है ।

तात्पर्य : हे राजा धृतराष्ट्र ! **योगेश्वर** भगवान कृष्ण और धनुर्धर पार्थ जहाँ भी हैं, वहाँ विजय, नैतिकता और खुशी का आश्वासन दिया है। ऐसा मुझे लगता है।

विशिष्ट अर्थ : गीता में आदि से अंत तक भगवान प्रकृति, आत्मा और जीव, परमात्मा इन तीनों के बीच तत्वों के अंतस्संबंध और समन्वय की व्याख्या करते हैं। इसके अलावा वह स्पष्ट करते हैं कि तीन तत्व असाधारण हैं और विलक्षण परमेश्वर तत्व हैं।

संजय जो प्रत्यक्षदर्शी थे और भगवान कृष्ण और अर्जुन की शाश्वत बातचीत को सुनते थे, पुष्टि करते हैं कि अगर दैवीय और मानवीय शक्तियां एकजुट हो जाएं तो कुछ भी हासिल करना असंभव नहीं है। वह आगे कहते हैं कि अतुलनीय जीत, समृद्धि, स्थिर नैतिकता, आराम और शांति पनपती है। इस श्लोक को "एक-श्लोकी गीता" कहा जाता है, और 'शांति का मंत्र' माना जाता है।

॥ हरिः ओम् तत्सत् ॥

कार्यक्रम के बारे में विवरण और
पंजीकरण के लिए कृपया
निम्नलिखित वेबसाइट पर जाएँ ।

www.gitarchana.com

मूसापेटा रामराजु
विश्व हिन्दू परिषद - अध्यक्ष
सेल नंबर : 98850 00506

बंडारि रमेश
विश्व हिन्दू परिषद सचिव
सेल नंबर : 98482 53311

डॉ. जि. वेंकटेश्वर राजु
संयोजक
सेल नंबर : 98851 96076

भगवद्गीता का पाठ करें ... पढ़ने केलिए प्रोत्साहित करें ... जीवन में इसका अभ्यास करें ...
आप इस कार्यक्रम में अवश्य भाग लें ।